Vol. 2, No.1 (January 2013) P. 1-8 Sangeet Galaxy
ISSN : 2319-9695

रवीन्द्र संगीत : एक शोधपरक अध्ययन

डॉ.दीपिका श्रीवास्तव
अतिथि प्रवक्ता,
इलाहाबाद डिग्री कालेज,
इलाहाबाद, उ0प्र0

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बहुमुखी प्रतिभा का पूर्ण विकास उनके संगीत में सर्वाधिक परिलक्षित होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जन्म के साथ ही एक ऐसा वातावरण मिला जहाँ कि हवाएं भी संगीत की सुमधुर ध्वनि से अनुगूंजित थी। ठाकुर परिवार के इस पारम्परिक सांगीतिक परिवेश का प्रत्यक्ष प्रभाव रवीन्द्रनाथ पर पड़ा।

रवीन्द्र संगीत पद–लालित्य, धुनों की मधुरता तथा भावों के सामंजस्य से परिपूर्ण है। शब्द और स्वर के इसी अर्द्धनारीश्वर स्वरूप को रवीन्द्र संगीत कहते है। रवीन्द्र संगीत के उत्स का आधार बंगाल है, परन्तु इसका मूल आधार शास्त्रीय संगीत है। कवि गुरू ने अपने संगीत का आधार शास्त्रीय रखते हुए भी उसको एक स्वतन्त्र पहचान दी। रवीन्द्रनाथ के गीतों की आत्मा मूलतः काव्य धर्मी है। काव्य के सृजन का आधार अंतःकरण की भाषा होती है। यही कारण है कि स्वर–मर्म की अपेक्षा काव्य–मर्म अधिक सुगम एवं सहज बोधगम्य होता है। काव्य धर्मिता के आधारभूत वैशिष्ट्य के कारण ही रवीन्द्र संगीत में एक मन स्पर्शी शक्ति है। यह शक्ति स्वरों एवं शब्दों की एकात्मकता में है। यही कारण है कि रवीन्द्र संगीत स्वतः ही स्फूर्त, अद्‌भुत एवं परिपूर्ण है।

रवीन्द्रनाथ स्वयं अपने को मूलतः कवि धर्मी मानते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है– My religion is essentially a poet's religion. Its touch comes to me through the same unseen and trackless channels as does the inspiration of the Music. My religious life has followed the same mysterious line of growth as has my poetical life.[1]

भारतीय संगीत अध्यात्म–साधना का एक सशक्त माध्यम हैं। रवीन्द्र संगीत में विभिन्न विषयों के समावेश होने पर भी वह अध्यात्म पर ही आधारित हैं। रवीन्द्रनाथ का मानस–धर्म, सत्यं शिवम् सुन्दरम्, ध्यान और उपासना के माध्यम से विकसित हुआ। कवि ने विश्व प्रकृति के अन्दर सत्य के अनिर्वचनीय रूप का दर्शन किया। इसी उपलब्धि का सत्य उन्हें सुर, छन्द, ताल तथा काव्यादि रचना में सदा अनुप्रेरित करता था। रवीन्द्र संगीत में अर्न्तभारतीय, भारतीय एवं विशेषकर बंगाल के वैविध्यमूलक सांगीतिक धाराओं का समन्वय हुआ हैं, परन्तु इतनी विविध संगीत–धाराओं के समन्वय होने पर भी रवीन्द्र संगीत इनके प्रभावों से मुक्त रहकर अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित किए हुए है। प्राचीन काल से प्रचलित शास्त्रीय संगीत के प्रति उनके मन में बहुत आदर था परन्तु उसमें निहित रूढ़ सीमाओं का उन्होंने समर्थन नहीं किया क्योंकि इसकी ये सीमाएँ स्वतन्त्र सृजन–चेतना के लिए बाधक थी। कवि रवीन्द्रनाथ शब्द और स्वर दोनों को एक दूसरे का पूरक मानते थे। एक ओर जहाँ उन्होंने गीत के शब्दों को काव्य–गुण से मण्डित किया वहीं दूसरी ओर स्वर के महत्व को भी प्रतिपादित किया।

रवीन्द्रनाथ सुर को हृदय से अंतः सम्बद्ध मानते थे। उनका मानना था कि संगीत जितनी गहराई से प्रकृति से जुड़ा है उतना अन्य किसी से नहीं। सम्भवतः इसलिये प्रकृति के स्वभाव और प्रभाव की दिशा के अनुरूप ही वे अपने गीतों की धुन की कल्पना किया करते थे। प्रभात के नव जागरण पर गीति–रचना करते समय प्रभातकालीन राग जैसे, भैरव, तोड़ी, रामकली तथां कालिंगड़ा आदि का अवलम्ब लेना इसी का

उदाहरण है। संध्याकालीन बेला के लिए अधिकतर इमन एवं पूर्वी, रात्रि–वर्णन के लिए कान्हड़ा, बिहाग, खमाज आदि रागों का प्रयोग, बसंत ऋतु लिए देश, मल्हार और शरद–वर्णन के लिए प्रार्तगेय राग–रागिनियों का उपयोग, रवीन्द्रनाथ के इसी प्रवृत्ति का प्रमाण हैं। कवि के धुन संयोजन में शास्त्रीय व्यतिक्रम भी हुआ है जैसे, सारंग को उन्होंने दोपहर के वर्णन में कभी प्रयोग ही नहीं किया। कवि गुरू ने ऋतुपरक रागों की सहायता से प्रकृति के छः ऋतुओं का रूपांकन अपनी नृत्य–नाटिका 'ऋतुरंग' में किया।

रवीन्द्रनाथ की रीति–रचना में छन्द वैचित्रय बड़ा ही कौतुहल पूर्ण विषय है। उन्होंने छन्द को स्पन्दन, वेग, गति या प्राण कम्पन्न कहा है– ''संगीत ओ छन्द'' निबन्ध में उन्होंने कहा– *''काव्येर छौन्दे जा काज, गाने तालेर शेई काज। अतएव छौन्दे जे नियोम कोविताये चौले ताले शेइ नियोम गाने चोलिबे ..... [2]कोबिताय जेटा छौन्दो, शोंगीते शेटाई लौय''*[3] अर्थात काव्य में छन्द का जो काम होता हैं, गानें में ताल का भी वही काम हैं। अतः छन्द जिस नियमानुसार कविता में चलेगी उसी नियमानुसार गाने में ताल भी चलेगा। .....कविता में जिसे छन्द कहते हैं वही संगीत में लय होती हैं। कवि के अनुसार अखिल ब्राह्मण्ड में अनादिकाल से लय व ताल की अविश्रान्त धारा प्रवाहित हो रही है।

रवीन्द्रनाथ के अनुसार, ताल, सुर को गति प्रदान करती है, इस कारण सुर में ताल का सन्निवेश विशेषकर अपरिहार्य सा लगता हैं। सुर की उत्पत्ति स्वतः स्फूर्त होती है, जबकि शब्द की सार्थकता उसके अर्थ नियोजन पर आश्रित होती है अर्थात शब्द के समान सुर अर्थ पर निर्भर नहीं है, यह स्वयं विकसित है। यह विशेष सुर के संयोग से ध्वनि वेग का एक समवाय उत्पन्न करती है और ताल इस समरूप वेग को गति प्रदान करती है। इस गति वेग से ही आवेग की सृष्टि होती है। संगीत श्रवण से आवेग निष्पन्न होता है तद्नुरूप हमारे चित्त पर प्रतिक्रिया होती है, जैसे राग भैरवी के श्रवण से ऐसा लगता है कि समस्त सृष्टि में अन्तरतम् विरह व्याकुलता विद्यमान है उसी तरह मल्लार के श्रवण से अश्रु गंगोत्री के किसी आदि निर्झर के कलकल निनादिनी की प्रतीति होती है। अतः कवि यही मानते थे कि राग रागिनी के विविध रूप भावक के मन में आवेग उत्पन्न करते हैं।

रवीन्द्रनाथ ने केवल गायन में ही नहीं बल्कि गायन के साथ–साथ वादन, नृत्य एवम् नाटकों में भी भाव की सर्वोपरि स्थिति को रेखांकित किया है। वाद्ययंत्र में भी जो छंद बजता है, इसमें कलाकार की भावना अभिव्यक्त होती है। नृत्य के आंगिक संचालनों में भी नर्तक कलाकार भावना का प्रस्फुटन प्रस्तुत करते हैं। उनके 'चित्रागंदा' 'श्यामा' तथा 'चन्डालिका' नृत्य नाट्यों के गीतों में भी प्राकृतिक भावों के सामंजस्य को नृत्य छंदों का अनुर्वतन किया है।

कवि गुरू ने ताल के क्षेत्र में अनुसंधान करना आवश्यक समझा और सफल भी हुए। ताल के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ के कई नूतन अवदान हैं, जैसे – शास्त्रीय झपताल का छन्द 1,2/1,2,3/1,2/1,2,3 के विपरीत गति में कवि ने 1,2,3/1,2/1,2,3/1,2 छन्द धारा दी जो 'झम्पक' के नाम से जाना जाता है। 'रूपकड़ा' नाम से प्रचलित रवीन्द्रनाथ के बनाए ताल का आधार मूलतः दक्षिण भारतीय 'सारताल' है, जिसकी छन्द रचना 3/2/3 की है। ऐसे ही कवि गुरू द्वारा रचित 'नवताल' जिसकी छन्द रचना 3/2/2/2 माला है। दक्षिण भारतीय कर्णाटि 'दुष्कर ताल' से मिलता–जुलता है जिसकी छन्द रचना 5/2/2 है। इसी प्रकार दक्षिण–संगीत के 'मणिताल', 'बिन्दुताल' से मिलता–जुलता कवि द्वारा रचित एकादशी ताल है जिसकी छन्द रचना 3/2/2/4 है। 2/4/4/4/4 छन्दों वाला उनका नवपंच नामक एक विलक्षण ताल भी है। स्पष्ट है कि छन्द सम्बन्धी ऐसी अनेक नव उद्भावनाओं से युक्त कवि की विलक्षण देन ताल के क्षेत्र में भी है। इसके अतिरिक्त राग स्वर मिश्रण के संदर्भ में रवीन्द्रनाथ अद्वितीय रहे। उन्होंने अपने गीतों में सभी देशों की धुनों को अपनाया था। देश–विदेश की ग्रहणीय धुनों को उन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक अपने संगीत, नृत्य एवं नाटकों में अपनाया था।

रवीन्द्र संगीत में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से लेकर राढ अंचल के कीर्तन, पश्चिम बंग का सहजिया और बाउल, पूर्व बंग का भाटियाली, सारि, गम्भीरा, मणिपुर का कीर्तन, आसाम का बड़ गीत और वन गीत एवं इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत की धुनों का सार्थक समावेश हुआ है। गुरूदेव पर वैष्णव कवियों का भी बहुत प्रभाव पड़ा। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, गोविन्ददास, ज्ञानदास आदि के रचनाओं को रवीन्द्रनाथ ने अति मनोयोग से अध्ययन किया था। रवीन्द्र रचित 'भानुसिंहेर पदावली' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य कई भाषाओं की गीति–रचनाओं को पारदर्शिता के साथ सफल अनुवाद किया। यहाँ तक कि वेद–उपनिषद के मंत्रों में भी उन्होंने सुरारोपण किया था। रवीन्द्र संगीत में हिन्दुस्तानी ''तेलेना'', ''चतुरंग'' जैसे गीति शैलियों पर आधारित संगीत भी विद्यमान है।

रवीन्द्र संगीत में गायकी का अर्थबोधः–

गुरु–शिय परम्परा से प्राप्त गायन–प्रणाली या शैलियों को 'गायकी' शब्द से सम्बोधित किया जाता है, जिसमें शिष्य उक्त विशिष्ट विशेषता को कायम रखते हुए अपने अभ्यास द्वारा चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न करता है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में 'गायकी' का जो तात्पर्य है, रवीन्द्र संगीत का उससे कोई प्रत्यक्ष तालमेल नहीं है। रवीन्द्र संगीत की उत्पत्ति का मूल एक विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित है, जो शैली निहित है वह सबसे अलग है। रवीन्द्र संगीत के गायक–कलाकारों का ढंग (जलसम) तो अलग–अलग होता है परन्तु 'गायकी' का प्रत्यय–प्रारूप एक ही होता है।

दीर्घकाल से चली आ रही एक विशेष गायन–प्रणाली जो रवीन्द्र संगीत को ''रीति–पद्धति'' प्रदान करती है वही उसका 'गायकी' कहलाती है। अतः रवीन्द्र संगीत का तात्पर्य उस विशेष शैलीगत वैशिष्ट्य से सम्बन्धित है जिसमें धुन गेय पद्धति में निखर उठती है एवं उसके शब्दों का भावरूप प्रतिभासित होता है तथा स्फटिक के समान भासमान होने लगता है। गुरुदेव ने विभिन्न शैलियों में प्रचलित गीतरूपों को आत्मसात् करके अपने ढंग से स्वयं गीत रचना की एवं विभिन्न स्वर–योजना के साथ उसे समृद्ध बनाया, इसलिए उनके गीतों को गाने के लिए विशेष प्रकार की साधना की आवश्यकता है।

उच्चारण, स्वर–निरूपण, स्वरों की शुद्धता तथा छन्द–ताल–लय के प्रतिपालन के साथ ही गीत के भावों को प्राणवन्त बनाने की गायक की निजी क्षमता, रवीन्द्र संगीत की विशेषताएं हैं। इसके अतिरिक्त रवीन्द्र संगीत में गीतों के शब्दों की प्रधानता परिलक्षित होता है। धुन का सहज आश्रय लेकर शब्दों को महत्त्व दिया जाता है।

रवीन्द्रनाथ, रवीन्द्र संगीत को गुरुमुखी विद्या मानते थे। उनका कहना था कि रवीन्द्र संगीत के लिए काव्य और स्वर (शब्द और संगीत) गीति–रीति, स्वर–विन्यास, अलंकार, ताल आदि की भिज्ञता–प्राप्ति के बाद उत्तम गुरुमुखी अनुशीलन की भी आवश्यकता है। गुरुदेव की सांगीतिक कलात्मकता को आत्मसात् करने के लिए कुछ विशिष्ट तथ्यों को जानना आवश्यक है, जो निम्न्वत् है–

काव्य और सुर :–

रवीन्द्र संगीत में काव्य एवं स्वर का विलक्षण समन्वय द्रष्टव्य है। अतः यही कारण है कि रवीन्द्र संगीत को काव्य एवं स्वर का अर्द्धनारीश्वर रूप कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिस प्रकार अपने काव्यों में प्राण भरा उसी प्रकार अपने संगीत में भी प्राण भर दिया था। इसी कारण उनके संगीत में काव्य, सुर तथा अध्यात्म का त्रिवेणी संगम है।

कवि रवीन्द्र के अनुसार,*''कीर्तोनेर मुख्खो आबेदौनटी तार काव्यगत् भाबेर सूर तार ही शौह्य मात्रो। अर्थात् कीर्तोन गान होलो, कौथा ओ शूरेर शार्थोक योगिक शिल्प।''*[4]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार, काव्य में जो अभिव्यक्ति की शक्ति है, सुर में नहीं है। स्वर, Abstract हैं अतः यह केवल भावनाओं की ही अभिव्यक्ति कर सकता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा, स्वर केवल स्वर ही नहीं हैं वरन् भावनाओं को प्रकाशित करने का एक माध्यम है तथा इन्हीं भावनाओं को स्वर तथा शब्दों द्वारा व्यक्त करना ही संगीत है। इसी को रवीन्द्रनाथ ने अपने शब्दों में कहा– *आमी गानेर कौथागुली के सुरेर ओपोरे दांड़ करावते चाई।''*[5]

अर्थात उन्होंने शब्दों के अनुसार स्वरों का चयन करके कविताओं को सुर में बांधा। उनके द्वारा रचित स्वर रचना, उनकी कविताओं के शब्दों में छिपे भाव को व्यक्त करती है। इसीलिए वे कहते हैं कि मैं गाने के शब्दों को सुर पर खड़ा रखना चाहता हूँ।

यह लक्षणीय है कि रवीन्द्र संगीत में किसी विशेष शब्द को विशेष रूप, सुर एवं विशेष ढंग से प्रकाशित करने का एक अपूर्व वैशिष्ट्य हैं। जैसे– कुछ शब्दों, ''उधाओ, उदास, व्यथा, अश्रु, चमक, चौमोक, ओगो'' इत्यादि के प्रयोग अनेक गीतों में हुआ है। परन्तु इन शब्दों की भावगम्भीरता जगह–जगह पर विशेष सुर तथा ढंग के साथ प्रकट हुई है। जैसे– *'शुकनो पाता, के जे छाड़ाय'* प्रकृति–परक इस गीत में 'उदास' शब्द प्रमुख है। जिससे सम्पूर्ण गीत का भाव प्रगाढ़ हो उठता हैं। वह 'उदास' शब्द यदि गायक कंठ से पूर्ण रूप से खिल उठे तभी उसके भावावेश का गुंजन सम्भव होगा। पर यही 'उदास' शब्द की अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न गीतों में भिन्न रूप से पाई जाती है। इतना ही नहीं, कई बार एक ही गीत में एक ही शब्द की पुनरावृत्ति हो जाती है किन्तु प्रत्येक बार उस विशेष शब्द का भाव तथा धुन की भंगिमा भिन्न–भिन्न होती है। जैसे– *''जोदि प्रेम दिले प्राणे''* में 'प्रेम' शब्द का धुन के वैचित्रय में ही सर्वाधिक अर्थ प्रकाशन है। 'प्रेम' शब्द को तीन बार, तीन रूपों से प्रयोग किया गया है। किन्तु कलाकार यदि उसके अर्न्तनिहित भाव रहस्य को बिना सोचे–समझे गाए तो गाने का भाव सार्थक नहीं हो पायेगा। रवीन्द्र संगीत के अनुसंधान से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक गीत में किसी न किसी ऐसे एक शब्द या पद पर रचयिता ने विशेष जोर दिया है जिससे उक्त गीत का सम्पूर्ण व्यक्तित्व खिल उठता है। यह बात विशेष रूप से प्रकृति सम्बन्धी गीतों में अधिक स्पष्ट है। जैसे– *'आजि गोधुलि लौगोने'* गीत में *शे आशिबे आमार मोन बौले,* इस अंश पर विशेष जोर दिया गया है। गाना गाते समय गायक को इन शब्दों के धुन वैशिष्ट्य का ज्ञान न होने पर गीत का भावरूप स्पष्ट नही हो सकता है बल्कि वह और भी विकृत हो उठता है।

रवीन्द्र संगीत में कई गीत हैं, जिनमें एक ही स्वर पर एक–एक पूरे पद को स्थिर रखा गया है। एक ही स्वर पर इतने सारे शब्दों की आवृत्ति करते रहने से साधारण दृष्टि से इसे संगीत में दोष समझा जाता है। जैसे– *'फिरे चल माटिर टाने* गीत के *'दिक् होते ओइ दिगौंतौरे कोल रोयेछे पाता'* अंश में। किंतु कार्यतः इस क्रिया के अनुसार गाने से, गाने के अंग में हानि तो नहीं होती है बल्कि एक अबाध उदार भाव धनीभूत होता है एवं गम्भीर स्थैर्य का भाव प्रकट करने के लिए मात्र एक ही स्वर पर स्थिरता ही यथेष्ट हैं। एक ही स्वर, प्रतीक्षा के भाव को तीव्रतर कर रहा है यह तीव्र आकुलता अचानक गति पाकर फिर जीवान्त हो उठती है।

केवल एकमात्र स्वर पर धुन की स्थिति दर्शाने की क्रिया रवीन्द्र–संगीत की एक विशेषता है जिसे अन्य संगीत रचयिता प्रदर्शित नहीं कर सके। किन्तु रवीन्द्र–संगीत में शब्द के भाव के साथ धुन के सामंजस्य साधन के लिए अर्थात कवित्व और भाव को मुक्ति देने के लिए गीतों के अनेक स्थल पर धुन के सम्पूर्ण रिक्त भाव को दर्शाया गया है।

गीतिरीतिः–

रवीन्द्र संगीत की गायकी में उचारण की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रवीन्द्र संगीत में गीति–कविता का शब्द ही भाव का प्रवक्ता है, धुन उसी भाव का प्राण है। शब्दोंच्चारण में कविता का भावार्थ स्पष्ट होना चाहिए। रवीन्द्र संगीत में शब्द और धुन का एकांगी मिलन हुआ है इनमें से किसी एक में भी त्रुटि होने पर गायन में रस–हानि होती है। इसलिए सार्थक कलाकार को एक ओर सुर–ताल और

दूसरी ओर शब्दोच्चारण पर ध्यान देना चाहिए। कथा और सुर को लेकर ही संगीत की सार्थकता है। शुद्ध और सही उच्चारण के लिए दो विषयों पर ध्यान देना आवश्यक है– 1. उच्चारण में स्वाभाविकता, 2. उच्चारण में स्पष्टता। उच्चारण में कृतिमता तथा अस्पष्टतया से गाने में रस–हानि होती है। उच्चारण के लिए निम्नलिखित कई विषयों पर ध्यान देना चाहिए–

हलन्त का सही उच्चारण अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि हलन्त का तीव्र उच्चारण गायन को दोषपूर्ण बनायेगा। जैसे–*'आमार मोल्लिका बौने'*– इस गीत में लोग 'साधारणतः मल–लिका' उच्चारण करते हैं जबकि होना चाहिए 'मल्लिका' फिर *''मोधु गौन्धे भौरा''* गाने में गौन्धे, स्निग्ध, कुन्ज, कानति, रक्त, अलक्त तथा सिक्त शब्दों में पहले अक्षरों को दीर्घायित करके हलन्त के उच्चारण को मृदु बनाता है। इसके अतिरिक्त कभी–कभी शब्दों के अंतिम अक्षर हलंत युक्त होने पर अकारान्त में उच्चारण करने का निर्देश भी है जैसे–*'के दिलों आबार आघात'* गाने में 'आबार आघात' इस प्रकार से हलन्त देकर साधारणतः गाया जाता है परन्तु होना चाहिए आबार, आघात।[6]

स्वर्ण वर्ण पर भी ध्यान देना अर्थात 'अ', 'आ', 'ए' आदि का सही उच्चारण करना चाहिए। कहीं–कहीं 'ए' अक्षर को पूर्णरूप से 'ए' ही उच्चारण होता है और कभी 'ऐ' भी जैसे *'आमार मोल्लिका बौने'* गीत का *'ऐखोनी बौनेर गान बोन्धु हौयेनि तो औबोशान तोबु एखोनि जाबे की चोले'* अंश में पहला ऐखोनी तथा दूसरा 'एखोनि' के उच्चारण में अंतर है। कई बार एक ही शब्द के उच्चारण में व्यतिक्रम होता है। जैसे–कहीं पर 'मन' को 'मन' तो कहीं 'मोन', फिर 'वन' को 'बन' या कहीं 'बोन' उच्चारित किया जाता है, यह निर्दिष्ट रहता है। मीड़ प्रधान गीतों को काफी सर्तकता से गाना चाहिए क्योंकि उनमें अति सहज ही मीड़ के साथ उच्चारण में अस्पष्टता आने का भय रहता है।

कुछ मुख्य उच्चारणों में अधिक सर्तकतापूर्वक अवधान अवलम्बित करना चाहिए, जैसे–कोई 'हृदय' को 'रिदय' अथवा 'छेड़े' को 'छेरे' उच्चारित करते हैं जो गलत है। बंगला में 'श', 'ष' तथा 'स' तीनों का उच्चारण एक ही तरह से होता है। दन्त्य 'स' को ''इस. . . . . स'' की तरह दबाव देकर उच्चारित करने से श्रुतिकटुता आती है।

अतः शब्दोच्चारण के विषय पर अत्यन्त सर्तक रहने की आवश्यकता है। रवीन्द्र–संगीत में यद्यपि भाव–प्रकाशन का संवहन शब्द के माध्यम से ही हो जाता है किन्तु गायन के समय शब्द और सुर की समन्वयात्मक एकात्मकता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। श्रोता को कभी यह आभास न हो कि वे केवल काव्यस्वाद कर रहे हैं या केवल सुर में लिप्त हैं। बल्कि वे यह अनुभव करें कि वे एक भावमय कथाओं का धुन श्रवण कर रहे हैं जो उनके भाव मानस के सूक्ष्मबोध को जागृत कर गम्भीर आनन्द का आस्वादन करा रही है।

स्वर विन्यास–

रवीन्द्रनाथ ने शास्त्रीय संगीत भंडार से श्रुति–स्वर–राग–ताल–छंद आदि संगीत के उपादानों को लेकर एक नई संगीत शैली का निर्माण किया। नई संगीत शैली के निर्माण में उनको जगह–जगह शास्त्रीय संगीत की नियमावली का उल्लंघन भी करना पड़ा। राग की शुद्धता की अपेक्षा गीत की भावभिव्यक्ति पर ही कवि का अधिक ध्यान था। रवीन्द्रनाथ ने शास्त्रीय राग–रागिनियों के मौलिक भाव को बिल्कुल अकृत्रिम रूप में रखा। उनके अनुसार राग मानव हृदय में विश्व हृदय का सुर आन्दोलित करता है। रवीन्द्रनाथ अपने गीतों में शुद्ध राग रूप कायम रखने की अपेक्षा राग–मिश्रण को ही अधिक श्रेयस्कर मानते थे। उनके शेष जीवन में रचित गीतों में राग का नाम भी निर्देशित नहीं है। राग–नाम निर्देश करने से तर्क का स्थान बन जाता है। कवि ने स्वयं इस सम्बन्ध में कहा था–

गानेर कागाजे राग रागिनीर ''नाम निर्देश ना थाकाइ भालो। नामेर मोध्ये तौर्केर हेतु थाके रूपेर मोध्ये ना।''[7]

उनके राग–मिश्रण में नवीनता हैं। कृत्रिमता का तो कहीं से भी कोई आभास नहीं मिलता। उनके राग–मिश्रण का उदाहरण प्रस्तुत है– *''आछे दुःख अछे मृत्यु''* स्वर वितान 27, इस गीत में चार–चार राग एक ही संगम में आकर मिले है– राग ललित, राग विभास, राग जोगिया तथा राग आसावरी एवं यह चारों ही प्रातःकालीन राग हैं। इन चारों रागों का मिश्रण इतनी विलक्षणता से सम्भव हुआ है कि एक साथ विरह और मुक्ति के भावों का पूर्णत्व प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ के कई गीतों के आकार को देखकर उन्हें ''प्रबन्ध–गान'' की आख्या दी जा सकती है।[8]

अलंकरणः–

रवीन्द्र संगीत में अलंकार का प्रयोग बहुत ही मर्यादित है। रवीन्द्रसंगीत में मीड़ का विशेष स्थान है। मीड़ के द्वारा ही शब्द का भाव यथार्थ रूप से प्रकाशित होता है परन्तु मीड़ का यह रूप एक विशेष रविन्द्रिक धारा के अन्तर्गत हैं एवं गाते समय गज वाद्य के संगत के साथ भली–भांति प्रकाशित किया जा सकता है। *''चित्तो आमार हारालो''* इस गीत में वैचित्र पूर्ण मीड़ गीत का प्राण है। इसके अतिरिक्त अन्य एक गीत *''विरौहा मोधुर होलो आजि''* में *'वेदोनातें'* अंश का मीड़ मधुर वेदना को रूप रस में पूर्णता प्रदान करता है।

रवीन्द्र संगीत और तानः–

गीत के भाव को सम्प्रसारित करने के लिए कवि ने आवश्यकतानुसार विभिन्न स्थानों पर तानों का प्रयोग किया है। अतः भाव प्रकाश के उद्देश्य से यहॉ तान का प्रयोग हुआ है, तान के लिए नहीं। *''शौपने आमार मोने होलो''* इस गीत में *''बोनेर चारि धारे''* अंश का 'धारे' के साथ जो तान युक्त हुआ हैं, वह वन के चारो ओर घूमकर मूल स्थान पर पुनः लौटकर आने के भाव को सम्प्रेषित करता है। तान सम्बन्धी कवि की एक उक्ति है–

''ए कौथा स्वीकार कोरतेइ हौबे तान जिनिषटा ऐकटा नियमहीन उच्छृंखलिता नौहे'' ..... *''तान जौतो दूर पौर्यन्तो थाके ना गानटि के औश्वीकार कोरते पारे ना, जे गानेर शोंगे जौखोन हौटात् छुटे बेरिये चौले तौखोन मोने हौय शे बुझि विक्षिप्त होये उधाओ होये चोले गैलो।'' किन्तु तार शेइ छूटे जाओआ केबोल मूल गानटि के आबार फिरे आशबार जोन्नेइ एवं शेई फिरे आशार रौशटिकेई निबिड़ कौरार जोन्ये।''*[9]

अर्थात तान नियमहीन उच्छृंखलिता नही है, वरन् तान को द्रत गति से गाने और फिर मूल गीत के गति में आने से रस को उत्पन्न करना है।

'शिउलि फूल' गीत के संचारी में *'आमार बौरोन माला'* अंश में 'माला' शब्द पर रे–म–ग, (बंगला स्वरलिपि के अनुसार रा–मा–ज्ञा) का विन्यास जोड़ा गया हैं, जबकि उसके धुन को संक्षिप्त भी किया जा सकता था। इस तरह के स्वर–विन्यास कवि के अनेक गीतों में भी दिखाई देते हैं।

श्रुति प्रयोग–

रवीन्द्र संगीत में श्रुति का एक महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। कविगुरु की श्रुति सम्बन्धी अपनी धारणा हैं। वह कहते हैं कि–

''एइ श्रुति आमादेर गानेर सूक्ष्म स्नायुतौन्त्र। इहारि योगे ऐक शूर केबोल ए आरेक शूरेर पाशापाशि थाके ता नौय तादरे मोध्धे नाड़िर शौम्बन्धो घौटे। एइ नाड़िर शौम्बंधो छिन्नो कोरिले राग–रागिनी जोदि बा टेके, तादेर छाँछटा बौदोल होइया चाय।''[10] अर्थात यह श्रुति हमारे गीतों का सूक्ष्म स्नायुतन्त्र है। इन्हीं

श्रुतियों के आधार पर स्वरों के मध्य नाडी का सम्बन्ध स्थापित होता हैं। इन्हीं नाडी सम्बन्धों को बदलने से राग–रागिनियों में परिवर्तन हो जाता है।

रवीन्द्रनाथ ने भाव प्रकट करने के लिए कहीं–कहीं जिन श्रुतियों का प्रयोग किया है, स्वरलिपि में उसके स्वरूप का पता चलना सम्भव नही हैं, मात्र योग्य गुरुकण्ठ से ही उसका पता मिल सकता है। कवि के द्वारा स्वयं गाये हुए गीत– *''तोबू मोने रेखो''* (रेकार्ड नं0. II हिन्दुस्तान रेकार्ड कम्पनी) में *''छौलो छौलो जौल ताइ दैखा देय नौयोन कोने''* इस अंश में *'नौयोन कोने'* तथा *''तोबू मोने रेखो''* इन दोनों स्थानों पर बड़ी स्पष्टता से श्रुति का सार्थक प्रयोग परिलक्षित होता हैं जिससे इस गीत में अर्न्तनिहित भावना का पूर्ण विकास हो पाया है।

ताल –

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में जहाँ छन्दों की विविधता तथा विचित्रता दृष्टिगत होती हैं, वहीं उनमें तालपरक विचित्रता सहज दिखाई देती हैं। उनके तालों में एक आकर्षक नूतनता का आभास होता है। यह नवीनता वास्तव में रवीन्द्रनाथ की ताल सम्बन्धी सृजनात्मक प्रतिभा को परिचय प्रदान करती हैं। काव्य और संगीत के रस–रूप को प्रकाशित करने में छन्द की एक अहम् भूमिका होती हैं। वास्तव में भिन्न–भिन्न छन्दों का काम भिन्न–भिन्न भावों को प्रकाशित करना हैं। एक ही गीत को दो विभिन्न छन्दों में गाया जाय तो भिन्न–भिन्न रस उत्पन्न होते हैं। टैगोर ने अपने बहुत से गीतों में इस प्रकार के छन्द–अन्तर का सार्थक–आविष्कार किया है। स्वर के रूप को एक ही रखकर, केवल अलग–अलग छन्दों का प्रयोग कर अलग–अलग भावों की अभिव्यक्ति कराना ही उनके सफल आविष्कार का परिणाम हैं। ऐसे गीतों में भाव–परिवर्तन अधिक स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता हैं। इसका एक उत्तम उदाहरण इस प्रकार हैंः–

''आजि झौरो–झौरो मुखौरो बादोलो दीने''

इस गीत को दो भिन्न–भिन्न तालों कहरवा तथा षष्टी में गाया जाता है। कहरवा ताल में बद्ध यह गीत चंचलता के भाव को व्यक्त करते है वहीं, यह गीत जब षष्ठी ताल में गाते हैं तो उदासीनता, विछिन्नता तथा व्याकुलता के भाव को व्यक्त करते हैं।

कवि ने विशेष गीतों में आड़ी के छन्द का प्रयोग किया हैं, जैसे स्वर–वितान संग्रह के गीत संख्या 25 *''जारा काछे आछे तारा काछे थाक'',* आदि गीति रचनाओं में आड़ी छन्द का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग हुआ हैं। इसी क्रम में टैगोर के मुक्त छन्दों के 'ढालागीत' की रचना की। इन गीतों का सुर किसी विशेष ताल में बंधे छन्दों द्वारा नियंत्रित होता है। है। रस की सृष्टि ही इन सब गीतों की प्रधानता है। संगीत में छन्द को लेकर विभिन्न परीक्षा एवं नये–नये छन्दों का प्रवर्तन टैगोर की सृजनात्मकता एवं प्रतिभा का प्रमाण है। पुरातन का अवलम्बन कर नयी–नयी सृष्टि करना उनके शिल्पीमन के लिए मुक्ति का साधन था। इसके अतिरिक्त भाव एवं काव्य छन्द के साथ–साथ धुन का सामंजस्य रखने के लिए कवि ने नये–नये तालों की सृष्टि की, जैसे–रूपकड़ा, षष्टी (4/2 तथा 2/4 उभय छन्द में षष्टी ताल), झम्पक, नवताल, एकादशी तथा नव पंचताल।

रवीन्द्र संगीत की गायकी के वैशिष्ट्य की यथार्थ वस्तु है– गाने का प्राण तथा भावरूप, जिसे खोजने के लिए रस–ज्ञान एवं प्रतिभा की आवश्यकता है। निःसंदेह रवीन्द्र–संगीत हमारी जातीय एवं सांस्कृतिक सम्पदा है। अतः इसका संरक्षण–संवर्धन उसके शुद्ध रूप की रक्षा करने से ही सम्भव है।

संदर्भ

1 Contemporary Indian Philosophy, (1936) P.g. 32

2 रविन्द्र रचना वाली पृष्ठ 149

3 रविन्द्र रचना वाली पृष्ठ 151

4 रवीन्द्र संगीत समीक्षा, ले0–अमल मुखोपाध्याय

5 द्रष्टव्य स्वर वितान, 39 तथा 53

6 रोबिन्द्र शोंगीतर 'गायकी'–श्री शैलजा रंजन मजूमदार – पृ० 99

7 रवीन्द्र रचनावली 14श खण्ड, पृ० 972 इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ ने उनकी भ्रातपुत्री इन्दिरा देवी चौधुरावी को एक पत्र में लिखा था।

8 आइ आशे ओइ ओति भैरव होरेषे–गीत मालिका 2 तथा स्व०वि० 31 अथवा ''नृत्येर ताले ताले''– स्व०वि० 2, 'हे निरूपौमा'– स्व० वि० 59, ''कृष्णकोलि''–स्व० वि० 13 इत्यादि।

9 साहित्य संख्या देश 1380, पृ0 101 में से उद्धृत

10 रवीन्द्र रचनावली–चतुर्दश खण्ड– पृ0 896